स.आई-१९ नगर संस्करण

में भगदड़ से

अधिकारी ने बताया कि ...की संख्या सैकड़ों है और अस्पताल घायलों से भरे हैं। खेल शुरू होने के ६ मिनट बाद ही यह दुर्घटना हो गयी। स्टेडियम की बालकनी पर एकत्र सैकड़ों दर्शक जब एकाएक धक्का देते हुए आगे की ओर बढ़े तो

...डयम में फुटबाल ... भीड़ से कुचल जाने के ...५ फुटबाल प्रेमियों की

...ताया गया है कि सैकड़ों ...डियम के एक छोर पर ... और वहां खड़े दर्शक ...र पड़े। जिस समय यह ...मय लिवरपूल और ...च मैच शुरू हुआ था। ...णी की हैं।

हो गयी थी। एक डाक्टर ने बताया ... स्थल का दृश्य बहुत ही भया... स्थान-स्थान पर लोग कराह रहे थे ... संख्या में दर्शकों के अंग भंग हो ग...

एम्बुलेंस के कर्मचारी और फायर ... लोग कुचले हुए व्यक्तियों को शवों ... निकाल रहे थे। लेकिन दुर्घटना हो...

ब्रिटेन में अब तक की सबसे बड़ी खेल त्रा...

...के अनुसार फुटबाल प्रेमी ...थवा नकली टिकट के ...के उस छोर पर एकत्र हो ...ल की टीम के खिलाड़ी

उसी समय यह भीषण दुर्घटना हो गयी। दुर्घटना के शिकार अधिकतर वे व्यक्ति हुए जो आगे की ओर खड़े थे।

आज की दुर्घटना मई १९८५ की उस दुर्घटना जैसी ही थी जो ब्रसेल्स में हुई थी। इसमें ३९ व्यक्तियों की कुचल जाने से मृत्यु

घण्टे बाद भी वहां एकत्र ५० हजार ... की भीड़ को दुर्घटना की भयान... आभास नहीं हुआ।

फुटबाल असोसियेशन के मुख्य ... ग्राहम केल्ली ने बताया कि ऐसा प्रती... कि मैदान के लीवरपूल वाले ...

...ी आरक्षण नीति का हिमाय...

...(यू.)। भारतीय ...श्री अटल बिहारी ...है कि विपक्ष भी इंका ...जाति और जनजातियों ...आरक्षण नीति हेतु कृत

...व अम्बेडकर के ...ों के सन्दर्भ में पार्टी के ...ठ की ओर से आयोजित ...में उन्होंने कहा कि

हाथ में थी।

प्रेस ट्रस्ट के अनुसार भाजपा ने आज कम्युनिस्ट पार्टियों की उनके इस कथन के लिए आलोचना की कि वे (दोनो पार्टियां) इंका को परोक्ष रूप से मदद करने को तैयार हैं

कि बैठक के दौरान गृहमंत्री ने ... नेताओं से शपथ पूर्वक यह वादा करा... वे ठक्कर रिपोर्ट के बारे में किसी को ... बतायेंगे, रिपोर्ट के उन अंशों को दि... अभी अप्रकाशित हैं।

भाषा के अनुसार वक्तव्य में यह ... गया है कि गृहमंत्री ने लोकसभा के ... और राज्यसभा के सभापति की उप... विपक्ष के नेताओं को ठक्कर ... अप्रकाशित अंश दिखाने की मांग ...

ॐ श्री विश्वेश्वराय नमः ॐ

यम-नियम

535/3

लेखक :–

योगिराज श्री चन्द्रमोहन जी महाराज

श्री सिद्ध गुफा प्रकाशन

योग प्रशिक्षण केन्द्र ग्राम व पोस्ट

सवाँई (आगरा)

द्वितीय संस्करण २२००] [मूल्य ५० न० पै०
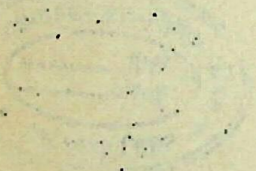
S 85
पाणिनि-प्रज्ञा-अनुसन्धान
तिथी..........
पु०सं०..........
भारती पुस्तकालय

श्री रामलाल प्रभवे नमः

❋ यम-नियम

★-+-★
★
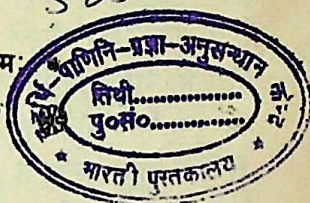
संसार का हर एक प्राणी जिस समय योग की महान महिमा को सुनता है व हिमालय के वन-खंड में रहने वाले योगियों के अद्भुत चरित्रों को सुनता है, अणिमा महिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य ईशत्व वशित्व आदि योग की अष्ट सिद्धियों का और योग से होने वाली दूसरी-दूसरी अनेक प्रकार की चमत्कारिक शक्तियों का ज्यों-ज्यों वर्णन सुनता है त्यों-त्यों उसके मन में योग-प्राप्ति की दृढ़ अभिलाषा होती जाती है संसार में जन्म लेने वाला कोई भी प्राणी ऐसा नहीं जिसको योग के ऐश्वर्यों का ज्ञान होने पर योग प्राप्ति की प्रबल चाह मन में पैदा न हो। इस प्रकार की दृढ़ इच्छा पैदा हो जाने के बाद मनुष्य यथाशक्ति योग प्राप्ति के उपायों में दृढ़ता से लगता है। उसकी प्रबल इच्छा रहती है कि वह जल्दी से जल्दी समाधि को प्राप्त कर ले। वह मन की अपनी धारणा के अनुसार योग के दूसरे अंग-उपांगों को न समझ कर जल्दी से जल्दी ध्यान समाधि प्राप्त करने का ही प्रयत्न करता है। किन्तु यह उसका प्रयत्न उसी प्रकार है जैसे प्रथम और द्वतीय श्रेणी का विद्यार्थी बी० ए०, एम० ए० की योग्यता की इच्छा रखता है। इस प्रकार के प्रयत्न कठिनता से सफल

हुआ करते हैं। कदाचित् किसी सिद्ध, महात्मा, सद् गुरु की कृपा से या ईश्वर की कृपा से कुछ स्थिति बन भी जाय तो साधन योग की पिछली साधना अभ्यास वैराग्य के बिना ऐसे साधकों का पुनः पतन होते देखा गया है। यद्यपि साधन योग व सिद्धयोग दोनों में बहुत अन्तर है। सिद्ध योग में ईश्वर व गुरु की कृपा से साधक की सभी साधनायें स्वतः हुआ करती हैं वह साधक जिसने किसी प्रकार से सिद्ध-योग में प्रवेश कर लिया है। उसके हृदय में प्रविष्ट हुई एक महान शक्ति के द्वारा उठाया हुआ वह बड़ी ही सरलता से अपने लक्ष्य को प्राप्त कर लेता है। उसको अष्ट विधि, यम नियम आदि की सभी साधनायें स्वतः बनती चली जाती हैं। किन्तु इस प्रकार की पूर्ण कृपा संसार के हर एक जीव को सहज ही उपलब्ध हो जाना बहुत ही कठिन है। साधन योग और सिद्ध योग की साधनाओं का अन्तर इसी प्रकार समझ लेना चाहिए जैसे हजारों मील के रास्ते को एक मनुष्य पैदल यात्रा करता हुआ वर्षों में तय कर पाता है और वायुयान के द्वारा उसी रास्ते को वह कुछ ही घण्टों में तय कर लेता है। यद्यपि दोनों के लिए रास्ता तो एक ही है किन्तु गतियों में महान अन्तर है। किन्तु जिस प्रकार से मनुष्य मात्र को वायुयान सुलभ नहीं इसी प्रकार से सिद्ध योग की प्राप्ति भी विरले ही संस्कारी आत्माओं को सिद्ध योगिराजों व ईश्वर की कृपा से हुआ करती है। इस महान कृपा को पा करके भी लोग प्रमाद-वश उपेक्षा वृत्ति से रहते हैं और अपनी ओर से किसी प्रकार की साधना का प्रयत्न नहीं करते हैं उन्हें अपने यथार्थ लक्ष्य से च्युत होते देखा गया है। इसी लिए भगवान पतंजलि जी ने –

585

यम नियमासन प्राणायाम प्रत्याहार धारणा
ध्यान समाधयोऽष्टावङ्गानि ।

योगसूत्र २।२।२६

कहकर के अष्टाङ्ग योग का उपदेश किया । भगवान पतञ्जलि जी की आज्ञानुसार अष्टाङ्ग साधना करने वाला व्यक्ति कभी भी लक्ष्य से च्युत नहीं हो सकता । अष्टाङ्ग योग की साधना में सबसे प्रथम यम, नियम की साधना करनी पड़ती है । उनमें :—

यम

अहिंसासत्यास्तेय ब्रह्मचर्यपरिग्रहा

अहिंसा सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य व अपरिग्रह यह पांच साधनायें यम कहलाती हैं, उनमें यम-नियमों की सब साधनायों की आधार भूत अहिंसा है । इसी सूत्र का अर्थ करते हुये भगवान व्यासदेव अहिंसा के अर्थ को स्पष्ट करते हुये लिखते हैं ।

अहिंसाः—

तत्राहिंसा=सर्वथा सर्वदा सर्वभूताना
मनभिद्रोह उत्तरे च यमनियमास्तनमूला-
स्तत्सिद्धिपरतया तत्प्रतिपादनाय प्रतिपाद्यन्ते,
तदवदातरूपकरणायैवोपादीयन्ते तथा चोक्तं-
स खल्वयं ब्राह्मणो यथा यथा व्रतानि

बहूनि समादित्सते तथा-तथा प्रमाद कृतेभ्यो हिंसा निदानेभ्यो निवर्त्तमान स्तामेवा वदात-रुपाम् अहिंसा करोति- ।

अर्थात् अहिंसा के अतिरिक्त शेष यम-नियम अहिंसा की पुष्टि के लिये ही हैं। इस विषय को इस प्रकार समझ लेना चाहिये, उदाहरणार्थ हम सत्य बोलते हैं। सत्य के अर्थ को स्पष्ट करते हुए भगवान व्यासदेव जी ने निम्नलिखित पंक्तियां लिखी हैं:—

सत्यं=यथाऽर्थेवाङ्-गमनसे, यथा दृष्टं यथाऽनु-मिते यथा श्रुतं तथा वाङ्मश्चेति परत्र स्वबोधसङ्क्रान्तये वागुक्ता सा यदि न वञ्चिता भ्रान्तावा प्रति पत्ति वन्ध्या वा भवे दिति एषा सर्व भूतोपकारार्थं प्रवृत्ता न भूतोपघाताय यदि चैवमप्यभिधीयमाना भूतोपघात परैव स्यान्न सत्यं भवेत् पापमेव भवेत तेन पुण्याभासेन पुण्य प्रति रूपकेण कष्टंतम प्राप्नुयात ॥

अर्थात् यथार्थ वाणी जैसे देखी सुनी व अनुमान की हुई, दूसरे को अपना अर्थ समझाने के लिये न बंचना से युक्त, न भ्रांतियुक्त व न अस्पष्टार्थ कही हुई, जो प्राणी मात्र के परोप-कार के लिये मनसा वाचा, कर्मणा सत्य प्रयुक्त होता है वही वाणी सत्य कहलाती है। इसी के द्वारा प्राणीमात्र का भला

होता है। इस लिए सत्य-पालन अहिंसा की निर्मलता के लिये और इसी प्रकार अस्तेय आदि जो है वो भी अहिंसा की निर्मलता के लिये अन्य सब प्रकार के व्रताचरण अहिंसा धर्म को ही परिपुष्ट करते हैं। यह अहिंसा किसी जाति किसी देश और किसी काल व समय से युक्त न हो और सार्वभौमिक अहिंसा हो तो महाव्रत कहलाती है। यथा भगवान पतञ्जलि के शब्दों में—

जाति देश काल समयानवच्छिन्ना :

सार्वभौमा महाव्रतम् ।

[योग सूत्र २।३।१]

पाणिनि-प्रज्ञा-अनुसंधान
तिथी.........
पु०सं०.........
भारती पुस्तकालय

जातिदेश आदि का अभिप्राय जैसे मछली मारने वाले केवल मछली ही मारते हैं। उनकी हिंसा मछली जाति में है। दूसरी सब जगह वह अहिंसक है। देश में जिस प्रकार से आजकल तीर्थ आदिकों में बलिदान देने की प्रथा है। तीर्थ स्थानों में जो बलि आदि देते हैं वह स्थान विशेष की हिंसा है। इसलिये देश विशेष की हिंसा और इसी प्रकार जो व्यक्ति किसी खास पुण्य काल में हिंसा करते हैं। जैसे पुण्य विषय किसी खास समय पर आने वाली अष्टमी, चतुर्थदशी आदि में बलि का विधान होता है। वो कालविशेष हिंसा, कालगता हिंसा कहलाती है। इसी प्रकार जो किसी खास विशेष समय के लिये बड़े-बड़े किसी प्रयोजन की सिद्धि के लिये हिंसा की जाती है वह समय की हिंसा कहलाती है। इन्हीं सभी प्रकार की हिंसाओं से निकल करके प्राणी मात्र में सब देश में, सब काल में और बड़े महान किसी कार्य के लिए भी जो हिंसक नहीं वो अहिंसा रूप महाव्रत
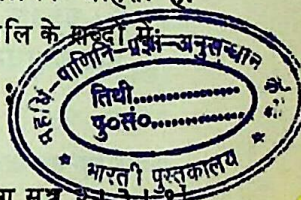
को धारण करने वाला बन जाता है।

हिंसा की हुई, कराई हुई, लोभ से, क्रोध से और मोह से मृदु, मध्य व अधिमात्रादि भेदों से सैकड़ों भेदों की है। पूर्ण अहिंसा व्रती वही कहला सकता है जो लोभ, क्रोध मोह के वश में होकर के किसी भी प्रकार से हिंसा न करे न कराये न अनुमोदन करे। भगवान पतंजलि जो लिखते हैं। :—

वितर्कबाधने प्रतिपक्षभावनम्।

योग सूत्र २। ३३

अर्थात् जब जब साधक के सामने हिंसा व्रत आये तब तब उसको प्रति पक्ष की भावना करनी चाहिये। मनुष्य लोभ, क्रोध मोह के वश में होकर के सोचता है मैं अपने शत्रु को मार डालूँगा और झूठ बोलना पड़े तो झूँठ भी अवश्य बोलूँगा, इसके धन को चुरालूँगा। इसकी स्त्री से बलात्कार करूँगा और उसके स्थान आदि को जबरजस्ती छीन कर उसका मालिक हो जाउँगा, इत्यादि भाव जिस समय साधक के मन में प्रबलता धारण करें तो साधक को इसके अतिरिक्त विपरीत भावनाओं को अपने हृदय में स्थान देना चाहिये। उसे सोचना चाहिए कि संसाराग्नि के घोर अंगारों में पिसते हुये मैंने प्राणीमात्र को अभय देनेवाला योग अपनाया है। अब मैं पुनः इस अग्नि में नहीं पडूँगा। इस प्रकार की धारणाओ को दृढ़ करता हुआ मनुष्य कृता, कार्यता अनमोदिता आदि तीनों प्रकार की हिंसाओं से बचकर के पूर्ण अहिंसाव्रत को प्राप्त करता है। वह प्राणीमात्र के प्रति वैर छोड़ देता है और इसके प्रति

भी प्रणीमात्र वैर छोड़ देते हैं। भगवान पतंजलि जी अहिंसा की पूर्ण पराकाष्ठा का फल बतलाते हैं। :—

अहिंसा प्रतिष्ठायां तत्सं.नधौ वैरत्यागः।

योग सूत्र २। ३८

अर्थात अहिंसा की पराकाष्ठा को पहुँच जाने वाले साधक के प्रति प्रणीमात्र वैर छोड़ देते हैं, इसी कारण से इस अहिंसा के पूर्ण प्रतीक हमारे ऋषि मुनियों के आश्रमों में शेर, चीता और साधारण अन्य मृगादिकों का समान-भाव के रहना सुनते हैं।

दूसरा यम सत्य है।

सत्य की परिभाषा ऊपर अहिंसा की पुष्टि में बतला चुके हैं अर्थात् मनसा, वाचा, कर्मणा प्रयुक्त की हुई वह वाणी जिसमें किसी को धोखा न दिया जाय (सत्य) कहलाती है।

सत्य के लिये उपनिषदों में बड़े-बड़े शब्द मिलते हैं।

सत्यं ज्ञानमनंतम् ब्रह्म।

तैत्ति० २। १। १

सत्य प्रभू का रूप है व वाणी का तप है

सत्येन लभ्यस्तपसा ह्येष आत्मा सम्यग्ज्ञानेन ब्रह्मचर्येण नित्यम् अंतः शरीरे ज्योतिर्मयोहि शुभ्रो य पश्यन्ति यतयः क्षीणदोषाः॥

सत्यमेव जयते (१) नानृतं सत्येनः पन्था विततो देवयान॥

अर्थात् सत्य, ज्ञान, ब्रह्मचर्य के द्वारा ही अंत: शरीर में शुभ्र ज्योतिर्मय आत्मा को देखता है, जिसको दोषों को क्षीण कर यति लोग मुश्किल से देख पाते है। हमेशा सत्य की ही जय होती है। देवों का मार्ग सत्य से विस्तृत है।

भगवान श्रीकृष्णचन्द्र जो महाराज ने श्रीमद्भगवद् गीता के सत्रहवें अध्याय के तेईसवें श्लोक में सत् शब्द ब्रह्म का नाम बतलाया है। यथा—

ॐ तत्सदिति निर्दिशो ब्रह्मणस्त्रिविधस्मृतः।
ब्राह्मणा स्तेन वेदाश्च यज्ञाश्च विहिता पुरा।

अर्थात ॐ तत् सत् यह तीन प्रकार का ब्रह्म का ही नाम है। इसी के द्वारा वेद यज्ञ व ब्राह्मणों का विधान हुआ। इसी प्रकार का संकेत उपनिषदों में स्थान स्थान पर भरा है।

सत्यं ज्ञानमनन्त ब्रह्म—तैत्रि ३ २—१—१
सत्यं ब्रह्म—बृहदारण्यक उपनिषद ५-५-१
अर्थात् सत्य ही ब्रह्म है।

श्रीविष्णु सहस्रनाम में भगवान को—

सत्यः सत्य पराक्रम कह कर स्तुति की गई है।

श्रीमद्भागवत पुराण के दशम् स्कंध के दूसरे अध्याय में गर्भ स्तुति के वर्णन में श्री भगवान कृष्ण चन्द्र को परम सत्य व सत्यात्मक शब्दों से सम्बोधित करके स्तुति की है। यथा

सत्यव्रतं सत्यपरं त्रिसत्यंस्यगोनिं निहितं चसत्ये।
सत्यस्यसत्यामृत सत्यनेत्रं न सत्यात्मकत्वां शरणं-
प्रपन्ना ॥

अर्थात् हे प्रभो आप सत्यव्रत, सत्यपरायण व तीनों कालों में परम सत्य हैं। सत्य ही आपकी प्राप्ति का मुख्य साधन है, क्योंकि आप सत्यात्मक हैं।

उन सर्वशक्तिमान सच्चिदानन्दघन प्रभु का स्वरूप सत्य है। वे स्वयं सत्य हैं, सत्य स्वयं परब्रह्म है। सत्य की महाशक्ति का वर्णन करते हुए हमारे पूर्वजों ने बड़े ऊँचे स्वर से कह दिया कि—

सत्येन वायुरावति सत्येनादित्यो रोचते दिवि सत्यं वाचः
प्रतिष्ठा सत्ये सर्वं प्रतिष्ठितं तस्मात्सत्यं परं वदन्ति।

नारायणोपनिषद् ७९

सत्य हो जय का मुख्य साधन है।

सत्यमेव जयते नानृतं, सत्येन पंथा विततो देवयानः।
येना क्रमन्त्यृषयोह्यप्तकामाः यत्र तत्सत्यस्य परमं निधानं।

मुण्डकोपनिषद् ३-१-६

अर्थात् सदा सर्वदा सत्य ही जय होती है। इस सत्य का अवलम्ब लेकर ऋषिलोक आप्तकाम हो गये व उस सत्य के परम प्रतिष्ठा रूप प्रभु को सरलता से प्राप्त कर लिया। भगवान् मर्यादा पुरुषोत्तम श्री रामचन्द्र जी के बनवास हो जाने के बाद उनको लौटाने के विचार से गये हुये वशिष्ठ वामदेव आदि गुरजनो के प्रति सत्य की महिमा को हृदय में धारण करते हुये श्री रामचन्द्र जी ने स्पष्ट शब्दों में कहा—

सत्यमेवानृशसं च राजवृत्तं सनातनम् ।
तस्मात्सत्यात्मकं राज्य सत्यं लोके प्रतिष्ठतः ।
ऋषयश्चीव देवाश्च सत्यमेव ही मेनिरे ।
सत्यवादी ही लोकेस्मिन पर गच्छति चाव्ययम् ।
उद्विजन्ते यथा सर्पान्नरादनृत वादिनः ।
धर्म सत्य परो लोकं मूलं सर्वस्य चोच्यते ।
सत्यमेवेश्वरो लोके सत्ये धर्मः सदाश्रितः ।
सत्यमूलानि सर्वाणि, सत्यान्नास्ति परमपदम् ॥
दत्तमिष्टं हुत चैव तप्तानि च तपासि,च ।
वेदाः सत्यप्रतिष्ठानाश्तश्मात्यपरो भवेत ।

वाल्मीकि रामायण—अयोध्याकाण्ड सर्ग १-१०-१५

अर्थात् सत्य ही सनातन राजवृत है । राज्य की व लोक की सत्य ही में प्रतिष्ठा है । ऋषि मुनि व देवता सभी ने सत्य को माना है । यही सनातन धर्म है । सत्यवादी ही इस लाक में अक्षय पद को प्राप्त करता है । जिस प्रकार मनुष्य सर्प से डरते हैं इसी प्रकार अनतृवादी से डरना चाहिये । क्योंकि इस ससार में सत्य ही परम तत्व है व सभी शुभों का मूल है ।

इस लोक व परलाक में सत्य ही ईश्वर है । धर्म सदा सत्य के आश्रित है । सर्व विश्व का मूल है । सत्य को बढ़ाकर कोई तत्व नहीं है । सत्य ही परम तत्व है । सभी दान, अनुष्ठान, यज्ञ

यतप सत्य से आधारित हैं। इसी प्रकार चारों वेद सत्य द्वारा ही प्रतिष्ठा पाने वाले हैं। अतः कल्याण चाहने वाले को सत्य परायण होना चाहिए। इस प्रकार सत्य की महान महिमा को बतला कर भगवान श्री रामचन्द्र जी अपने व अपने पिता जी के सत्य वचन के पालन के लिए अयोध्या नहीं लौटे।

ठीक इसी भाव को गोस्वामी तुलसीदास जी महाराज ने अपनी रामायण में स्पष्ट लिखा है—

सत्य मूल सब सुकृत सुहाये,
वेद पुरान विदित मनु गाये।
धर्म न दूसर सत्य समाना,
आगम निगम पुरान बखाना।
नहिं असत्य सम पातक पुंजा,
गिरिसम होइ कि कोटिक गुंजा।

इसी प्रकार अन्य सन्तों की वाणियों में भी सत्य की महान महिमा का वर्णन कूट-कूट कर भरा पड़ा है।

जाके हिरदै साँच है, ताके हिरदै आप।

अर्थात् जिसके हृदय में सत्य है, वहीं प्रभु का भी वास है।

ठीक यही भाव महाभारत में व अन्यान्य आर्य-ग्रन्थों में भरे पड़े हैं।

अश्वमेध सहस्रं च सत्यं च तुलया धृतम्।
अश्वमेध सहस्रेभ्य सत्यमेव विशिष्यते।

सर्ववेदाविगमनं, सर्वतीर्थावगाहनम् ।
सत्यं च वचनं राजन समं वा स्यान्नैवासमम् ।
नास्ति सत्य समो धर्मो, न सत्याद्विशिष्यते परम् ।
न तीव्रतरं किंचिदनृतादिह विद्यते ।

महाभारत आदि पर्व ७४-१०२-१०५

अर्थात् सहस्रों अश्वमेध यज्ञ की तुलना करें तो सत्य ही उत्कृष्ट है। इसी प्रकार सारे वेदों का पढ़ना, तीर्थ स्नान सत्य की तुलना में नहीं आ सकते। सत्य के समान कोई धर्म नहीं है व असत्य के समान घोर पातक नहीं है।

महाभारत के शान्ति पर्व के १६२ वें अध्याय में श्री भीष्म पितामह ने बडे ऊँचे शब्दों में सत्य का व्याख्यान किया और अन्त में यहाँ तक कह दिया कि—

नान्तो शब्दो गुणानां च वक्तुं सत्यस्य पार्थिव ।
अतः सत्यं प्रशंसन्ति विप्रा सपितृदेवता ।

इसी प्रकार महाभारत के अनुशासन पर्व में -

सत्येन सूर्यस्तपति सत्येनाग्नि प्रदीप्यते ।
सत्येन मारुतो वान्ति सत्ये सर्वं प्रतिष्ठतम् ।
सत्येन देवा प्रीयन्ते पितरोब्राह्मणास्तथा ।
तस्मादाहु परो धर्मस्तस्मात्सत्यन्नलंघयेत ।
मुनय सत्य निरताः मुनयः सत्य विक्रमाः ।
मुनयः सत्य शपथास्तस्मात्सत्यं विशिष्यते ।

अर्थात् सत्य की महिमा का वर्णन कहाँ तक करें। सब ऋषि मुनि देवता स्थान-स्थान पर सत्य की महिमा गाते हैं। सत्य से सूर्य तपता है। सत्य से वायु बहता है, अग्नि तपता है। सत्य से ही सब प्रतिष्ठित हैं। देव लोग, मुनि, ब्राह्मण सत्य से प्रसन्न होते हैं। अतः कभी भी सत्य का उलङ्घन नहीं करना चाहिए। सब ऋषि-मुनियों का बल सत्य ही है। इसी प्रकार के भावों से वेद शास्त्र व पुराण भरे पड़े हैं।

श्री मनु जी महाराज ने अपनी मनुस्मृति के अध्याय आठ के ९६ वें श्लोक में निशङ्क सत्यवादी को बड़ा ऊँचा महत्व दिया है। यथा—

यस्य विद्वान हि वदतः क्षेत्रज्ञो नाभिशंकते।
तस्मान्नदेवा श्रेयांसो लोके अन्यं पुरुषं विदुः।

मनुस्मृति अध्याय ८ श्लोक ९६

अर्थात् निशङ्क सत्यवादी का देवता लोग भी परम आदर करते हैं, व उसको बड़ा मानते हैं। इसी प्रकार मनुस्मृति के चौथे अध्याय में प्रिय एवं सत्य बोलने को ही सत्य सनातन धर्म बतलाया है। यथा—

सत्यं ब्रूयात्प्रियं ब्रूयान्नब्रूयात् सत्यमप्रियं।
प्रियं च नानृतं ब्रूयादेष धर्मः सनातनः।

मनु० अ० ४–१३८

अर्थात् सत्य बोलो किन्तु प्रिय सत्य बोलो। कटु सत्य न बोलो ऐसा न हो कि झूठ को सत्य सा बनाकर प्रिय बोल दो।

कभी नहीं सत्य ही प्रिय शब्दों में बोलो। यही सनातन धर्म है। मनुष्य को मनसा वाचा कर्मणा सत्यवादी होना चाहिए। वाणी से शब्द कहे जा सकते हैं। भाव छिपाया जा सकता है। किन्तु यह सब असत्य है, सत्य नहीं। जो किसी सभा में बैठकर सत्य को जानते हुए भी नहीं कहते वे इस प्रकार असत्य ही बोलते हैं।

ये तु सभ्या सदा ज्ञात्वा तूष्णींध्यायन्नासते।
यथा प्राप्तं न ब्रुवते ते सर्वेऽनृत वादिनः।

अर्थात् जो लोग सत्य को समझते हुये भी सत्य नहीं कहते वे सब अनृतवादी ही हैं। अतः मनसा वाचा कर्मणा सत्य बोलने वाला ही सत्यवादी कहला सकता है।

सत्य वचन व वाक्सिद्धि

जो मनुष्य पूरी तरह मनसा वाचा कर्मणा सत्य बोलते हैं व अपने संकल्पमात्र को भी असत्य नहीं होने देते, उनकी बुद्धि में ऋत वास कर जाता है : वे लोग जो सोचते हैं। वह सत्य है, जो कहते हैं. वह सत्य है, उनकी कोई भी क्रिया असत्य नहीं हो सकती। योग-दर्शन में भगवान् पतञ्जलि जी आदेश करते हैं:—

सत्य प्रतिष्ठायां क्रियाफलाश्रयत्वम्।

साधन पाद सू० ३६

इस सूत्र पर व्यास भाष्य:—

धार्मिको भूया इति भवति धार्मिकः स्वर्गं प्राप्नुहीति प्राप्नोति स्वर्गं, अमोघाऽस्य वाग् भवति।

अर्थात् सत्य प्रतिष्ठ योगी जिसने अपने पूरे जीवन में कभी असत्य नहीं बोला उसकी वाणी अव्यर्थ हो जाती है। उसको बिना प्रयत्न के वाक् सिद्धि रहती है। उसके मुख से निकला बचन कभी मिथ्या नहीं होता।

अखिल अण्ड ब्रह्माण्ड नायक परम सत्य स्वरूप भगवान श्रीकृष्ण चन्द्र जी महाराज ने महाभारत में द्रोपदी को सान्त्वना देते हुये प्रतिज्ञा पूर्वक अपनी वाकसिद्धि को कहा है।

चलेद्धि हिमाञ्छैलो, मेदनी शतधा भवेत्।
द्यौः पतेच्च सनक्षत्रा न में मोघं बचो भवेत्।
सत्यं ते प्रतिजानामि कृष्णे बाष्पो निगृह्यताम्।
हतमित्राञ्छिया युक्तान्न चिराद द्रक्ष्यसेपतीन्।

अर्थात् हिमालय अपने स्थान से विचलित हो जाय, पृथ्वी के टुकड़े-टुकड़े हो जांय और चाहे आकाश नक्षत्रों सहित गिर पड़े किन्तु मेरी वाणी कभी भो मिथ्या नहीं हो सकती। द्रोपदी आँसू पोछो। बहुत थोड़े समय में तुम अपने पतियों को शत्रु रहित भूमण्डल पर राज्य श्रीयुक्त देखोगी। सत्यस्वरूप भगवान ने -

सत्यं ते प्रतिजाने:——कह कर उपरोक्त शब्द द्रोपदी से कहे और हुआ भी वही।

इसी प्रकार अभिमन्यु की पत्नी उत्तरा को सान्त्वना देते हुए भगवान श्रीकृष्णचन्द्र जी ने अश्वत्थामा के ब्रह्मास्त्र प्रयोग

द्वारा उसके मृत शिशु को जीवन दान देने के समय बार-बार प्रतिज्ञा पूर्वक अपने सत्य का साक्षी रखते हुए कहा कि

न ब्रवीम्युत्तरे मिथ्या सत्यमेतद्भविष्यति ।
एष संजीवयाम्येनं पश्यतां सर्व देहिनाम् ।
नोक्तपूर्वंमया मिथ्या स्वैरेष्वपि कदाचन ।
न च युद्धात्परावृत्तस्तथा संजीवतामयम् ।
यथा मे दयितो धर्मो ब्राह्मणाश्च विशेषतः ।
अभिमन्योः सुतो जातो मृतो जीवत्वयन्तथा ।
यथाहं नाभि जानामि विजयेन कदाचन ।
विरोधन्तेन सत्येन मृतो जीवत्वयं शिशु ।
यथा सत्यश्च धर्मश्च मयि नित्य प्रतिष्ठतौ ।
तथा मृतः शिशुरयं जीवतादभिमन्युजः ।
यथा कंसश्च केशी च धर्मेण निहितौ मया ।
तेन सत्येन बालोऽय पुनः सजीवतामयम् ।

महा० अश्वमेध पर्व ६८-१८-२३

अर्थात् अय उत्तरे मैं कभी भी असत्य नहीं बोलता हूं। अतः मेरी यह वाणी अवश्य ही सत्य होगी। सभी के देखते-देखते इस बालक को मैं अभी जिला देता हूं। मैंने आजतक मजाक में भी असत्य नहीं बोला है और न ही कभी युद्ध से पीछे हटा हूं। इसी सत्य के फलस्वरूप यह बालक जी उठे।

जिस प्रकार मुझे धर्म व विशेषतः ब्राह्मण प्यारे हैं तो उसी के फलस्वरूप यह मरा हुआ अभिमन्यु का बालक जी उठे। यदि मैंने आजतक कभी विरोध नहीं किया है तो इसी सत्य के फल-स्वरूप यह मरा हुआ बालक जी उठे।

जिस प्रकार सत्य व धर्म मुझ में हर समय प्रतिष्ठित है। उसी के फलस्वरूप यह मरा हुआ अभिमन्यु का बालक जी उठे। यदि मैंने कंस और केशी को धर्म से मारा है (न कि विरोध से) तो इस सत्य के फलस्वरूप यह बालक जी उठे। इसी प्रकार अखिल विश्वात्मा ने स्वयं भी बार-बार सत्य की शपथ दी व फलस्वरूप अभिमन्यु का वह बच्चा जिन्दा हो गया।

हमारा अनुभव है जो लोग मनसा वाचा कर्मणा सत्य का पालन करते हैं, बहुत थोड़े समय में ही उनकी वाणी में शक्ति आ जाती है व क्रिया फल होने लगता है। पंजाब जिला करनाल में एक महात्मा एक जगह पर वास करते थे, वे अन्य अपनी सभी प्रकार की साधनाओं को करते हुये भी सत्य पालन को अपना ध्येय बनाया था। उनकी यह साधना थी कि मनसा, वाचा, कर्मणा जो भी क्रिया करते थे वह सत्य ही करते थे और अत्यन्त मृदुभाषी थे। उनकी वर्षों की साधना के फलस्वरूप उनके जीवन में सत्य चमक उठा था। वह जो भी किसी को कह दिया करते थे, सत्यदेव भगवान की कृपा से वह पूरा होता था। उनके मन से किया हुआ कोई भी दृढ़ निश्चय विफल नहीं होता था। योगीराज भगवान पातंजलि जी के अनुसार उनकी वाणी क्रिया फल वाली हो गई थी। वे स्वयं इस बात को मानते थे कि मेरा जीवन सत्यदेव की आराधना से ही पूर्ण

निर्भय व अन्य सभी विघ्न बाधाओं से रहित है। सत्य पूर्ण ब्रह्म है और उसकी आराधना स्वयं परब्रह्म की आराधना है व सब प्रकार से ओज और तेज को बढ़ाने वाली है। अतः कल्याण की अभिलाषा वाले व्यक्तियों को भगवान पातंजलि जी के बतलाये हुये दूसरे यम सत्य को अपने जीवन में परी तरह अपनाने का प्रयत्न करना चाहिए। सत्य ही सब कल्याणों का मूल है।

अस्तेय तीसरा यम है।

अस्तेय धर्म भी अहिंसा भाव की परिपुष्टि के लिए है। अर्थात दूसरे के धन को चोरी से, बल से किसी भी प्रकार से अपहरण न करना अस्तेय है।

अन्यदीये तृणे रत्ने काञ्चने मौक्तिकेऽपिच।
मनसा विनिवृत्तिर्या तदस्तेयं विदुर्बुधा ॥

अर्थात् किसी दूसरे के तृण, रत्न या मुक्ता आदि के चुराने में मन की वृत्ति न होने को अस्तेय कहा गया है। जिस व्यक्ति की अस्तेय में पूर्ण प्रतिष्ठा हो जाती है उस को सर्व रत्न उप॰ स्थित होने लगते हैं। किन्तु उसकी उनकी कामनायें नहीं रहती।

अस्तेयप्रतिष्ठायां सर्वरत्नोपस्थानम्

यो॰ सू॰ २-३७

अर्थात् अस्तेय की पूर्ण प्रतिष्ठा हो जाने पर योगी को सब प्रकार से सब ऐश्वर्य प्राप्त होते हैं। रत्न आदि स्वयं ही प्राप्त होने लगते हैं। इसके बाद

ब्रह्मचर्य चौथा यम है।

ब्रह्मचर्य की महिमा से हमारे शास्त्र ओत प्रोत हैं। किन्तु आज कल के समाज में दुर्व्यसनों को अधिक मात्रा में बढ़ जाने के कारण ब्रह्मचर्य जीवन प्रायः लुप्त सा ही है। वीर्य धारण करने को ही ब्रह्मचर्य कहते हैं। वीर्य को हमारे शास्त्रों में ब्रह्म-रूप से कथन किया गया है। जो वीर्य को धारण करे वह ब्रह्मचारी कहलाता है। वीर्य हमारे शरीर में सातवीं धातु है उसका स्वरूप हमारे शास्त्रों में इस प्रकार वर्णित है।

शुक्रं सौम्यं सितं स्निग्धं बल पुष्टिकरं स्मृतम्।
गर्भबीजं वपुः सारो जीवनाश्रम उत्तमः ॥

मनुष्य जब अन्न सेवन करता है उससे रस बनता है, रस के बाद रक्त, रक्त के बाद मांस, मांस के बाद मेद, मेद के बाद हड्डी (अस्थि) अस्थि के बाद मज्जा, मज्जा से वीर्य बनता है और वीर्य से ओज की उत्पत्ति होती है। जो मनुष्य को देदीप्यमान रखता है। वीर्य सम्पूर्ण शरीर का आधार, जीवन का आशय और परम पुष्टिकर है। जिस प्रकार से दूध में घी और ईख के रस में गुड व्यापक रहता है। इसी प्रकार से वीर्य सारे शरीर में व्यापक रहता है। इसी से मन और बुद्धि का पूर्ण विकास होता है। यही सर्व सिद्धियों का मूल है शिव संहिता में भगवान शंकर ने ऊँचे शब्दों में आज्ञा की है।

मूलम्—मरणं बिन्दु पातेन जीवनं बिन्दुधारणे।
तस्मादति प्रयत्नेन कुरुते बिंदुधारणम् ॥ ८८ ॥

मूलम्--जायते म्रियते लोके बिन्दुना नात्र संशयः ।
एतज्ज्ञात्वा सदा योगी बिन्दुधारणमाचरेत ॥ ८६ ॥
मूलम्- सिद्धे बिन्दौ महायत्ने किं न सिध्यति भूतले ।
यस्य प्रसादान्महिमा ममाप्येदृशो भवेत ॥ ६० ॥

अर्थात् बिन्दु के पतन से मरण व बिन्दु के धारण से जीवन होता है। प्राणी का जन्म और मरण बिन्दु से ही होता है। इसलिए योगी को प्रयत्न करके बिन्दु धारण करना चाहिए। यत्न पूर्वक बिन्दु जय कर लेने पर ससार में कोई भी ऐसा कार्य नहीं जो सिद्ध न किया जा सके। भगवान कहते हैं कि मेरा जो कुछ प्रभाव संसार मे दिखलाई देता है वो केवल वीर्य धारण से ही है। ब्रह्मचर्य के नियम बहुत बड़े-बड़े हैं। शास्त्र विधि से ब्रह्मचारियों की दो संज्ञायें रखी गई हैं—

(१) नैष्ठिक [२] उपकुर्वाण

नैष्ठिक---नैष्ठिक ब्रह्मचारी वह कहलाता है जो जीवन पर्यंत अखण्ड ब्रह्मचारी रहे। उदाहरणार्थ --भीष्म पितामह, शंकराचार्य, आर्य समाज प्रवर्तक स्वामी दयानन्द हुये हैं।

२--उपकुर्वाण: उपकुर्वाण ब्रह्मचारी वह कहलाता है जो समय की अवधि तक ब्रह्मचर्य आश्रम का पूर्ण रूप से पालन करके गृहस्थ में प्रवेश कर जाय। किन्तु किसी भी संज्ञा का कोई भी ब्रह्मचारी हो, ब्रह्मचर्य अवस्था में मैथुन त्याग परमावश्यक है।

कर्मणा मनसा वाचा सर्वावस्था सुसर्वदा ।
सर्वत्र मैथुन त्यागो ब्रह्मचर्यं प्रचक्षते ॥

जो सब अवस्था में मन वाणी कर्म से सर्वथा मैथुन का त्याग करता है। वही ब्रह्मचारी कहलाने का अधिकारी है।

मनुस्मृति आदि में ब्रह्मचर्य आश्रम के लिये बहुत बड़े बड़े नियम लिखे हैं। लेख के बढ़ जाने के भय से इन सब का यहां उद्धाहरण करना आवश्यक नहीं समझा गया। किन्तु इस विषय में सभी शास्त्रों का एक मत है कि मन से भी ब्रह्मचारी को विषयों का चिन्तन नहीं करना चाहिये। क्योंकि—

ध्यायतो विषयान्पुंसः सङ्गस्तेषूपजायते सङ्गात्संजायते
कामः कामात्क्रोधोऽभिजायते ॥
क्रोधाद्भवति संमोहः संमोहात्स्मृतिविभ्रमः।
स्मृतिभ्रंशाद बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति ॥

गीता २-६२-६३

अर्थात् विषयों का चिंतन करने से मनुष्य को संग, व संग से काम, काम से क्रोध और क्रोध से मोह, मोह से स्मृतिभ्रंश और स्मृतिभ्रंश से बुद्धि नाश और बुद्धिनाश से सर्वनाश हो जाता है। भगवान श्री कृष्ण की आज्ञानुसार जो मनुष्य चिंतन मात्र से विषयों का स्मरण नहींकरता वही ब्रह्मचर्य के नियमों का पालन कर सकता है। अन्यथा नहीं। जिसने इस ब्रह्मचर्य रूप महा शक्ति को धारण कर लिया है, उसने संसार को जीत लिया है। ब्रह्मचारी में सिद्धों की तरह शक्ति पात करने की योग्यता आ जाती है। भगवान पातञ्जलि से ब्रह्मचर्य धारण का फल एक सूत्र में बतलाया है:—

ब्रह्मचर्यप्रतिष्ठायां वीर्यलाभः ।

योग सूत्र २-३८

ब्रह्मचर्य की पूर्ण प्रतिष्ठा में पूर्ण सामर्थ्य लाभ होता है। इसी सूत्र का भाष्य करते हुये भगवान ब्यासदेव जी कहते हैः—

यस्य लाभाद् प्रतिघानुगुणानुत्कर्षो यतिः सिद्धश्च विनेयेषु ज्ञानमाधातुं समर्थो भवतीति ।

अर्थात इस ब्रह्मचर्य के धारण करने से अनुपम गुण बढ़ते हैं और पूर्ण ब्रह्मचर्य सिद्ध हो जाने पर ब्रह्मचारी अपने शिष्यों में शक्ति संचार करके ज्ञान धारण करा सकता है।

अपरिग्रह पांचवा यम है !

परिग्रह का न होना अपरिग्रह कहलाता है। संसार के सब विषयों में और अपने शरीर में स्वत्व बुद्धि का नाश हो जाने पर प्राणी शरीर धर्मों से अपने आपको अलहैदा देखता है और उसको अपने पूर्व संस्कार स्मरण होने लगते हैं। मैं कौन था ? क्या था ? कैसा था ? क्यों था ? आगे क्या हूँगा ? इस प्रकार की प्रवृत्तियाँ मन में घूमने लगती हैं। ऐसी भावना से शरीर धर्म में भी उपरति हो जाने के बाद उसको जन्म जन्मान्तर की कथाओं का स्मरण होने लगता है। भगवान पातञ्जलि जी लिखते हैंः—

अपरिग्रहस्थैर्ये जन्मकथान्तासंबोधः ।

योग सूत्र १--३९

अर्थात पूर्णतः अपरिग्रह की स्थिरता हो जाने के बाद जन्म जन्मान्तरों की कथाओं का सबोध होता है। यह सब यमों को सिद्धियाँ हैं।

इसके बाद पाँच नियम हैं।

यमो के बाद नियमों का ही विषय आता है।

शौचसन्तोषतपः स्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि

नियमाः। यो० २-३२

कह करके भगवान पातञ्जलि जी ने नियमों का वर्णन किया उनमें से पहिले शोच है।

१-शौचः-शौच का विषय लम्बा है। भगवान पातञ्जलि जी ने तोः—

सत्त्वं पुरुषयोः शुद्धिसाम्ये कैवल्यम् ॥

यो० सू० ३-५५

कह करके बुद्धि और पुरुष के शुद्धि साम्य को ही कैवल्य कहा अर्थात बुद्धि सतोगुण, रजोगुण, तमोगुण के मलों को छोड़ कर के पूर्ण पवित्र हो जाती है। तो पुरुष साक्षात्कार हो जाया करता है। यह शुद्धि की पराकाष्ठा है। विवेक ख्याति पर्यन्त मनुष्य पूर्ण शुद्धि का ही प्रयत्न करता रहता है। किन्तु फिर भी शुद्धि दो प्रकार की मानी गई है। जैसे योगी याज्ञवल्क्य के शब्दों में:—

गोचं तु द्विविधं प्रोक्तं बाह्यमाभ्यतर तथा।
मृञ्जलाभ्यां स्मृत वाह्यं मनः शुद्धि स्तथान्तरम् ॥

अर्थात शौच बाह्य और अभ्यन्तरं भेद से दो प्रकार का है। बाह्य शौच मिट्टी जल आदि के द्वारा किया जाता है और दूसरा मन की शुद्धि से होता है। वाह्य शौच के भी वाह्याभ्यन्तर रुप से भी दो भेद माने जाते हैं। जैसे बाह्य शौच में ठीक समय पर मल त्याग, दन्त धावन, हाथ, कान, नाक, मुँह नेत्रादि सब इन्द्रियों को बाह्य शुद्धि पवित्र जल आदि से शरार स्नान करना व अभ्यतर शौच में शरीर के भीतर के सब अवयवों की षट कर्मों के द्वारा शुद्धि करना जैसे नासका से सूत्र नेति करने पर मस्तिष्क की शुद्धि और धोतिकर्म के द्वारा आमाशय की शुद्धि न्योली कर्म के द्वारा अग्निआशय, पक्वाशय आदि की शुद्धि, बस्ती, कर्म के द्वारा मलाशय की शुद्धि व बज्रोली के द्वारा मूत्राशय की पूर्ण शुद्धि होती है। यह सब बाह्य शौच का ही विस्तार है। मृञ्जलादि के द्वारा बाह्य शरीर हाथ पैर आदि की पूर्ण शुद्धि की जा सकती है। किन्तु शरीर के भीतर के अवयवों के आशयों की शुद्धि के लिए षटकर्मों का करना आवश्यक बन जाता है। षटकर्मों में नेति, धोति, न्योली, बस्ती, कपाल भाती व त्राटक माने गये हैं। ये शरीर के भीतरी देश की शुद्धि के लिए परमावश्यक हैं। इसीलिए योगी लोग प्राणायाम आदि उत्तम क्रियाओं को आरम्भ करने से पहिले षटकर्मों के द्वारा शरीर की बाह्याभ्यंतर की शुद्धि करके प्राणायाम करने का अधिकार प्राप्त कर लेते हैं। ये सब बाह्य शुद्धि हैं। इनके

अतिरिक्त अभ्यंतर शौच में मन की शुद्धि के लिए हमारे शास्त्रों में अनेक प्रकार के उपायों का वर्णन है। उनमें योगाङ्गों का अनुष्ठान करना परमावश्यक है।

योगाङ्गानुष्ठानाद् शुद्धिक्षये ज्ञानदीप्तिराविवेक ख्यातेः।

अर्थात विवेक ख्याति पर्यन्त योगाङ्गानुष्ठान करने से अशुद्धि का नाश होता रहता है और ज्ञान का प्रकाश होता रहता है। योगाङ्गों में जप तप स्वाध्याय ईश्वर भक्ति आदि सभी सम्मिलित हैं। भगवान मनु के कथनानुसार:—

अद्भिर्गात्राणीशुध्यति, मनः सत्येन शुध्यति।
विद्यातपोभ्यां भूतात्मा, बुद्धिर्ज्ञानेन शुध्यति॥

मनु अ० ५-श्लोक १०९

अर्थात मृज्जलादि के द्वारा शरीर की शुद्धि होती है। सत्य के द्वारा मन की शुद्धि विद्या और तप के द्वारा आत्मा और ज्ञान के द्वारा बुद्धि शुद्ध होती है। इन्हीं सब नियमों को समझ करके बाह्याभ्यन्तर शौच का पूर्ण करता हुआ शौचके पूर्ण फल को प्राप्त कर लेता है। अंग प्रत्यंगों तक में भी उसकी घृणा होने लग जाती है और प्राणी के संसर्ग से दूर हो जाता है। भगवान पातञ्जलि जी के शब्दों में: -

शौचात्स्वाङ्गजुगप्सा परैरसंसर्गः।

योगसूत्र २।४०

अर्थात् शुद्धि की पराकाष्ठा से योगी को अपने अंगों में भी घृणा होने लगती है। ऐसी स्थिति में दूसरों का संग तो हो ही कैसे सकता है? यह बाह्य शुद्धि की पराकाष्ठा है। किन्तु इसके

अतिरिक्त ज्यों-ज्यों अभ्यन्तर शौच बढ़ता है त्यों-त्यों अन्तः-करण की शुद्धि मन की पवित्रता और एकाग्रता, इन्द्रिय जय और आत्म दर्शन की योग्यता बढ़ती चली जाती है।

सत्त्वशुद्धिसौमनस्यैकाग्र्येन्द्रियजयात्मदर्शनयोग्यत्वानि च।

योगसूत्र २।४१

उपरोक्त दोनों प्रकार के बाह्याभ्यान्तर शौच के नियमों को समझ करके यथा विधि पालन करने वाला साधक शुद्धि के फल स्वरूप आत्म दर्शन को पा सकता है। इसके बाद दूसरा नियम संतोष है।

संतोष---संतोष का अर्थ है मन की पूर्ण तुष्टि। संतोषी वही कहला सकता है जो दृष्टानुश्रविक विषयों में पूर्ण वितृष्ण है। जिसको इस लोक से ब्रह्मलोक पर्यन्त तक के भोग विचालित नहीं कर सकते वही पूर्ण संतुष्ट कहला सकता है। ऐसा व्यक्ति स्थिति प्रज्ञ कहलाता है। स्थिति प्रज्ञ के लक्षण भगवान श्रीकृष्ण ने गीता के तीसरे अध्याय में इस प्रकार से किये हैं :

दुःखेष्वनुद्विग्नमनाः सुखेषु विगतस्पृहः ।
वीतरागभयक्रोधः स्थितधीर्मुनिरुच्यते ॥
यः सर्वत्रानभिस्नेहस्तत्तत्प्राप्य शुभाशुभम् ।
नाभिनन्दति न द्वेष्टि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥

अर्थात् जिसका मन दुखों में उद्विग्न नही होता और सुखों में आशक्त नहीं होता, जिसमें राग है न भय है और न क्रोध है। जो सर्वत्र स्नेह रहित शुभ या अशुभ कैसी भी स्थिति को पाकर के न खुशी होता है और न दुखी होता है, उसी की बुद्धि स्थिर

है। ऐसा मुनि जिसने इतने ऊँचे संतोष को प्राप्त कर लिया है कृतार्थ हो जाता है, उसका कोई भी विचलित नहीं कर सकता। भगवान श्री पातञ्जलि जी ने संतोष का फल अनत्तम सुख लाभ लिखा है। अनुत्तम सुखी वही है जिससे बढ़कर कुछ नहीं हो सकता। जिसके विषय में भगवान श्रीकृष्ण जी ने गीता मे इस प्रकार वर्णन किया है :

सुखमात्यन्तिकंयत्तद् बुद्धि ग्राह्यमतीन्द्रियम् ।
वेत्ति यत्र न चैवायं स्थितश्चलति तत्वतः ।

गीता ६-२१

यं लब्ध्वा चापरं लाभं मन्यते नाधिकं ततः ।
यस्मिन्स्थितो न दुःखेन गुरुणापि विचाल्यते ।

गीता ६-२२

अर्थात् वो सुख अतीन्द्रिय व बुद्धि ग्राही है जिसमें स्थिति होने पर मनुष्य को बड़े से बड़ा दुख भी विचलित नहीं कर सकता और जिसको प्राप्त कर प्राणी अपने आप को कृत कृत्य समझता है और उससे बढ़कर कुछ नहीं समझता। कृत कृत्य हुआ, परम सुख को अनुभव करता हुआ ऐसा प्राणी गुण वितृष्ण हो जाता है और अपने आपको कृतार्थ जानकर के परम ब्रह्म में लीन हुआ कह उठता है :

मातर्मेदिनि तात मारुत सखे तेजः सुबन्धो जल
भ्रातर्व्योम निबद्ध एष भवतामन्त्य प्रणामाञ्जलिः
युष्मत्संग वशोपजात सुकृतोद्रेक स्फुर निर्मल
ज्ञानापास्त समस्त मोह महिमा लीये परे ब्रह्मणि ।

हे माता पृथ्वी, तात वायु, सखे तेज, हे मित्र जल, हे भाई आकाश मैं आप सब को प्रणाम करता हूं। क्योंकि आप सब के संग से पुण्य बना, व पुण्य के उदय होने से मोह की महिमा हट गई और अब मैं परम ब्रह्म में लीन हो रहा हूं।

तप तीसरा नियम है।

तप––भगवान पातञ्जलि जी ने –

तपः स्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि क्रियायोगः।

कह करके क्रिया योग का वर्णन किया। इस सूत्र का भाष्य भगवान व्यासदेव जी लिखते हैं –

नातपस्विनो योगः सिद्ध्यति, अनादिकर्मक्लेशवासना चित्रा प्रत्युपस्थित विषय जाला चाशुद्धिर्नान्तरेण तपः सम्भेदमापद्यत इति तपस उपादानं,तच्च चित्तप्रसादनमबाधमानमनेन सेव्यमिति मन्यते।

अर्थात् तप के बिना योग सिद्ध नहीं होता। अनादि काल से कर्म क्लेश वासना आदि के द्वारा उत्पन्न हुआ विषय जाल अन्तःकरण की शुद्धि के बिना नहीं कटता। इसीलिए तप आवश्यक है, और वो तप जिसमें चित्त अधिक क्लेश को प्राप्त नहीं। योग शास्त्र के योग सूत्र २/३२ के भाष्य में—

तिथी........
पृष्ठ........

तपः=द्वन्द सहनं द्वन्दश्च=जिघत्सापिपासे, शीतोष्णे स्थानासने काष्ठमौनाकारमौने च व्रतानि चैव यथा यागं कृच्छ्रचान्द्रायणसान्तपना दीनि।

अर्थात द्वन्द सहन का नाम तप है। द्वन्द भूख, प्यास, सर्दी, गर्मी, जोड़े का नाम है। इसके अतिरिक्त एक आसन पर बैठकर काष्ठ मौन, आकार मौन व कृच्छ्र चान्द्रायण आदिक व्रत करना भी उत्तम तप माना गया है। काष्ठ मौन वो मौन कहलाता है जिसमें व्रत करने वाला व्यक्ति काष्ठ वत् बैठा रहे। किसी प्रकार के इंगितों से भी अपने भाव को प्रगट न करे। आकार-मौन वो कहलाता है जिसमें आकार व अपने इंगितों से भीतर की इच्छा को प्रगट करके केवल मात्र जिह्वा पर नियन्त्रण रखा जाता है। काष्ठ मौन व आकार मौन के द्वारा जिह्वा पर पूर्ण नियन्त्रण होता है। किसी प्रकार की अशुभ वाणी मुँह से नहीं निकलती और इसी प्रकार दूसरों के द्वारा प्रयुक्त की गई शुभ व अशुभ वाणी शान्त भाव से सहन करने की ताकत बढ़ती है। इसके अतिरिक्त कृच्छ्र चान्द्रायण आदिक व्रत समूह यद्यपि क्लेशों को क्षीण करने के लिए उत्तम है किन्तु, उसमें भगवान व्यासदेव जी के शब्दों को याद रखने की आवश्यकता है :

चित्तं प्रसादनमबाधमानमनेना सेव्यमिति।

जिसमें चित्त की प्रसन्नता बनी रहे, कष्टदायी न हो। इसी प्रकार से ये सब व्रतादि करने चाहिए, जिससे वे मन की एकाग्रता में बाधक न हों। जो लोग इस प्रकार का कठोर घोर तप

करते हैं जो आत्मपीड़ा के साथ किया जाता है, उसको भगवान श्री कृष्ण जी ने तामस तप कहा है। इसलिए उत्तम तप वही है जो श्रद्धापूर्वक बिना कष्ट के आत्मसाक्षात्कार के लिए व क्लेशों को क्षीण करने के लिए किया जाय। गीता में भगवान श्रीकृष्ण जी ने उत्तम प्रकार शरीर वाणी व मन के तपों का वर्णन किया है—

"देवद्विजगुरुप्राज्ञपूजनं शौचमार्जवम् ।
ब्रह्मचर्य अहिंसा च शारीरं तप उच्यते ॥
अनुद्वेगकरं वाक्य सत्य प्रिय हित च यत् ।
स्वाध्यायाभ्यसनं चव वाङमयं तप उच्यते ॥
मनः प्रसादः सौम्यत्वं मौनमात्मविनिग्रहः ।
भावसंशुद्धिरित्येतत् तपो मानसमुच्यते ॥

गीता १७/१४-१६

अर्थात् देव द्विज, गुरु व बुद्धिमान लोगों की सेवा करना व शौच व नम्रता धारण करना, ब्रह्मचर्य और अहिंसा व्रत का पूर्ण रूप से पालन करना, यह शारीरिक तप कहलाता है। मन की प्रसन्नता, मृदुता, मौन धारण करना आत्मनिग्रह और भावों की शुद्धि यह मानस तप कहलाता है। मनुष्य मात्र के लिए ये तीनों तप उपदेय हैं।

इसके अतिरिक्त मन के राजस, तामस भावों को क्षीण करने के लिए, ज्ञान दीप्ति के लिए कृच्छचान्द्रायण आदिक व्रत भी सामर्थ्यानुसार करने चाहिए। किन्तु पवनाभ्यास करने वाले साधक के लिए कृच्छचान्द्रायण आदिक व्रत की आवश्यकता

नहीं। उनके लिए प्राणायाम ही परम तप है। उनके लिए प्राणायाम के साथ-साथ ब्रह्मचर्य, अहिंसा, सत्य भाषण आदि ही परम तप है। भगवान पातञ्जलि जी ने तप का फल इस प्रकार कहा :—

कायेन्द्रियसिद्धिरशुद्धि क्षयात्तपसः।

योगसूत्र २-४३

अर्थात् तप के द्वारा अशुद्धि नाश हो जाने पर योगी को कायिक व ऐन्द्रियसिद्धि स्वतः ही उपलब्ध हो जाती है। कायिक सिद्धि से अणिमा, महिमा आदि व ऐन्द्रिय सिद्धि से दूर दर्शन दूर श्रवण आदि प्राप्त होती हैं। इसके अतिरिक्त शरीर के बलाबल व व सामर्थ्य को देख करके किये जाने वाले तप के द्वारा सब कुछ साध्य है। यथा :—

यद् दुष्करं दुराराध्यं दुर्जयं दुरतिक्रमम्।
तत्सर्वं तपसा साध्यं तपो हि दुरतिक्रमम्॥

अर्थात् तप के द्वारा कोई भी ऐसा कार्य नहीं, जो नहीं किया जा सकता। अतः शास्त्र विधि के अनुसार तप बड़ा परम उपादेय है।

स्वाध्यायः चौथा नियम स्वाध्याय है। स्वाध्याय का अर्थ करते हुए योग सूत्र २-१ के भाष्य में भगवान व्यासदेव लिखते हैं :-

स्वाध्यायः=प्रणवादिपवित्राणां जपः मोक्ष शास्त्राध्ययनं वा।

प्रणवादि प्रभू के पवित्र नामों का जप करना या मोक्षशास्त्र गीता आदि उपनिषदों का पाठ करना स्वाध्याय कहलाता है। प्रणव की महिमा हमारे शास्त्रों में बहुत उत्कृष्टता से भरी हुई है। ब्रह्मा, विष्णु, शिव आदि सब देवों की उत्पत्ति प्रणव से है :—

प्रणवात्प्रभवो ब्रह्मा प्रणवात्प्रभवो हरिः ।
प्रणवात्प्रभवोरुद्रः प्रणवोहि परो भवेत् ॥
अकारे लीयते ब्रह्मा ह्युकारे लीयते हरिः ।
मकारे लीयते रुद्रः प्रणवो हि प्रकाशते ॥

अर्थात् ब्रह्मा, विष्णु, शिव तीनों की उत्पत्ति प्रणव से है। तीनों ही देव अकार में ब्रह्मा उकार में विष्णु मकार में शिव लीन हो जाते हैं। इसलिए ब्रह्मा, विष्णु, शिवात्मक प्रणव ही सर्वत्र प्रकाशित है। प्रणव के जाप से सब प्रकार के विघ्नों की निवृत्ति होती है और प्रत्यक्ष चेतन की प्राप्ति होती है और प्रत्यक्ष चेतन की प्राप्ति होती है। भगवान पातञ्जलि जी ईश्वर का लक्षण लिखने के बाद योग सूत्र १-२७ में उसका बोधक नाम प्रणव का ही निर्देश करते हैं और उसका जप और उसके अर्थ ध्यान करने की आज्ञा देते हैं :—

तञ्जपस्तदर्थभावनम् ।

योगसूत्र १-२८

कह करके प्रणव का जाप और अर्थ का ध्यान करने की आज्ञा देते हैं व इसके आगे के सूत्र में प्रणव जप का फल बतलाते हैं :—

पाणिनि-प्रज्ञा
तिथी..........
पृष्ठ०..........
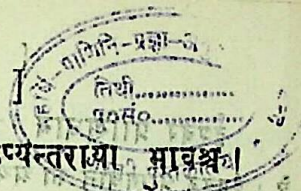
ततः प्रत्यक्चेतनाधिगमोऽप्यन्तरायाभावश्च ।

योग सूत्र १-२९

अर्थात् प्रणव का जाप करने के फलस्वरूप प्रत्येक चेतन की प्राप्ति अर्थात् आत्म-दर्शन होता है व विघ्नों का नाश होता है। सब प्रकार की विघ्नों की निवृति के लिए प्रणव जप की उपनिषदों में स्थान-स्थान पर आज्ञा की है :—

प्रणवं प्रजपेद्दीर्घं सर्वविघ्नोऽपसातये ।

इसी प्रकार से उपनिषदों गीता आदि का पाठ करने से अंतःकरण की शुद्धि होती है व इष्ट देव की कृपा से मनोकामना लाभ होता है।

स्वाध्यायादिष्टदेवतासंप्रयोगः ।

योगसूत्र २-४४

देवा, ऋषयः सिद्धाश्च स्वाध्याय शीलस्य दर्शनं ।
गच्छति, कार्येचास्य वर्त्तन्ते इति ।

अर्थात देवता लोग, ऋषि लोग, सिद्ध लोग स्वाध्याय शील व्यक्ति के सामने जाते हैं और उसके काम कर दिया करते हैं। स्वाध्याय और योग का परस्पर महान सम्बन्ध है :—

स्वाध्यायाद् योगमासीत योगात् स्वाध्याय मामनेत्
स्वाध्याययोगं सम्पत्त्या परमात्मा प्रकाशेत ।

अर्थात् स्वाध्याय से योग, ध्यान को प्राप्त हो व ध्यानावस्था में स्वाध्याय का मनन करे। स्वाध्याय और योग, दोनों की सम्पत्ति से परमात्मा का प्रकाश होता है। सच्चे मन से स्वाध्याय में रत रहने वालों को सफलता करामलकवत हो जाती है।

ईश्वर प्राणिधान :—पाँचवा नियम ईश्वर प्रणिधान है। ईश्वर प्रणिधान का अर्थ भगवान व्यास देव जो योग सूत्र २-१ के अर्थ में लिखते हैं :—

ईश्वर प्राणिधानं = सर्व क्रियाणां परमगुरावर्पण तत्फलं सन्यासो वा।

अर्थात् परम गुरु ईश्वर में सब शुभाशुम कर्मों का अर्पण करना या उसके कर्म फल का त्याग करना ईश्वर प्रणिधान कहलाता है। योग शास्त्र समाधि बाद में भगवान पातञ्जलि जो ने :-

ईश्वर प्राणिधानाद्वा:—कह करके ईश्वर प्राणिधान को समाधि प्राप्ति का एक खास उपाय बतलाया है। इस सूत्र का अर्थ लिखते हुए भगवान व्यास देव जी लिखते हैं :—

प्राणिधानाद्=भक्ति विशेपाद् आवर्जित ईश्वर—स्तयनुगृह्णात्यभिधानमात्रेण ।

अर्थात् भक्ति विशेष से अभिमुख हुआ ईश्वर इच्छा मात्र से कृपा करता है। जिससे उसको शीघ्रातिशीघ्र समाधि उपलब्ध होती है, पूर्ण अनुराग के बिना आत्म समपरण नहीं हो सकता।

भक्ति परानुरक्तिरिश्वरे: कह करके नारद जी महाराज ने नारद भक्ति सूत्र में ईश्वर में परानुरक्ति को ही भक्ति कहा है। जब तक ईश्वर में पूर्ण अनुराग नहीं होता तब तक जीव भक्त नहीं कहला सकता। इसी भाव को स्पष्ट करते हुए

585

पाणिनि-प्रज्ञा-अनुस-
तिथी..............
पु०सं०............
भारती पुस्तकालय
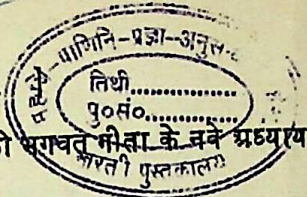
भगवान श्री कृष्ण जी ने अर्जुन को भगवत् गीता के नवे अध्याय में आज्ञा दी है :—

यत्करोपि यदश्नामि यज्जुहोषिददासियत् ।
यत्त पस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम् ॥
शुभाशुभे फलैरेवं मोक्ष्यसे कर्मबन्धनैः ।
संन्याम योगायुक्तात्मा विमुक्तो मामुपेष्यसि ॥

अर्थात् हे अर्जुन जो तू करता है, जो खाता है, जो हवन करता है, जो देता है व जो तप करता है वो सब मेरे अर्पण कर दे। ऐसा करने से सब प्रकार के शुभाशुभ कर्मों से छूट करके मुक्तात्मा हो करके मुझ को प्राप्त हो जायेगा।

जिन्होंने ईश्वर को पूर्ण आत्म समर्पण किया, ऐसे संसार में ऊँचे भक्त आत्मा के उदाहरण हैं। जिनको ईश्वर कृपा से समाधि लाभ हुई। ध्रुव, प्रहलाद, बृजगोपिकायें, सूरदास, तुलसीदास नरसिह मेहता, मीरावाई आदि इसी विषय के प्रतीक थे। जिन्हें ईश्वर कृपा से समाधि प्राप्त हुई।

इस लेख में हमने यम-नियमों का सूक्ष्म में वर्णन किया है। इनका अच्छी प्रकार से पालन करने वाला मनुष्य किसी भी प्रकार से पतन को प्राप्त नहीं हो सकता है। योग मार्ग के प्रत्येक साधक के लिये यम नियमों का पालन करना अति आवश्यक है। किन्तु नियमों से भी यमों का प्रथम पालन करना परमावश्यक है। जो मनुष्य यमों का पालन नहीं करता और नियमों के पालन का प्रयत्न करता रहता है, उसका अहिंसा, सत्य,

ब्रह्मचर्य आदि के अभाव से पतन हो सकता है। किन्तु जिसने अहिंसा, सत्य व अस्तेय आदि का पूर्ण रूप से पालन किया है और उसके साथ-साथ शौच, संतोष आदि नियमों का पालन किया है वह व्यक्ति पूर्णतया अपने लक्ष्य को पा लेता है।

अतः अन्य योगाङ्गों की साधना से पहिले यम-नियमों की साधना परमावश्यक है।

॥ इति ॥

मूल्य एक रुपया पचास पैसे

...से वार्ता ...

...२१ मरे

...ने ...

...जारी किया है। २...
...लई प्रभाकरण को बात...
...त किया गया है तथा कहा गया कि

...और बटालियनों ...पसी

...ति लिट्टे प्रमुख या उनके अधिकृत ...धि से उनके द्वारा बताये किसी भी ...पर मिलने के इच्छुक हैं।
...होंने कहा कि सरकार देश में शांति और ...य स्थिति बहाल करना चाहती है।

इसके साथ-साथ वह बातचीत, समझौते और सहमति के जरिये सामाजिक या अन्य किसी अन्याय को समाप्त करना चाहती है।

श्री प्रेमदास ने बातचीत का इसी तरह का निमंत्रण ११ अप्रैल १९८९ को दिया था।

इस बीच, श्रीलंका के विदेश मंत्रालय के प्रवक्ता ने आज यहां बताया कि भारतीय शांति सेना की ५ और बटालियनों की स्वदेश वापसी १८ अप्रैल से शुरू होगी। तमिल उग्रवादियों के हमले में श्रीलंका की सेना के २१ सैनिक मारे गये ये सैनिक देश के उत्तरी पूर्वी भाग में मारे गये।

दस सैनिकों को वेलिओया के गजाबापुरा में घात लगाकर उस समय मारा गया जब वह गश्त पर थे। इनकी मदद के लिए और सैनिक भेजे गये पर उनके ऊपर भी अंधाधुंध गोली चलनी शुरू हो गयी जिससे उनमें से ११ मारे गये।

दोनों ओर से चलने वाली गोलियों के चपेट में चार नागरिक घायल हो गये। उस क्षेत्र को

...और मंत्री

...में मुख्यमंत्री बने थे। उससे पूर्व १३

स्थित हिल्सबार...
सेमीफाइनल मै...
परिणाम स्वरू...
मृत्यु हो गयी।
पुलिस रिपो...
दर्शकों के बोझ...
बना बैरियर टू...
भीड़ भरे चबू...
दुर्घटना हुई ...
नाटिंघम फारेस्...
ये दोनों टीमें ...
प्रारम्भिक ...
दर्शक बिना ...
आधार पर ...
गये थे जिध...

वि...

नई ...
जनता पा...
वाजपेयी ने अ...
की तरह ही अ...
के उत्थान के...
संकल्प है।
डाक्टर ...
जन्मशताब्दी ...
अनुसूचित जा...